श्री हनुमान् जी महाराज
परम पूज्यपाद श्री रामकिंकर जी महाराज
50

अतुलितबलधामंहेमशैलाभदेहं

दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।

सकलगुणनिधानंवानराणामधीशं

रघुपतिप्रियभक्तं वातजातंनमामि ॥

श्री हनुमान् जी महाराज

तात्त्विक विवेचना

युगतुलसी पद्मभूषण
परम पूज्यपाद श्रीरामकिंकर जी महाराज

रामायणम् ट्रस्ट
रामायणम् आश्रम, युग तुलसी पं. रामकिंकर उपाध्याय
परिक्रमा मार्ग, जानकी घाट, श्रीधाम अयोध्या-२२४ १२३ (उ. प्र.)
फोन - (०५२७८) २३२१५२

प्रकाशक :
रामायणम् ट्रस्ट
रामायणम् आश्रम, युग तुलसी पं. रामकिंकर उपाध्याय परिक्रमा मार्ग,
जानकी घाट, श्रीधाम अयोध्या-२२४ १२३
फोन - (०५२७८) २३२१५२ फैक्स - २३३४६८

द्वितीय संस्करण : सन् २००८, वसंत पंचमी, सम्वत् २०६४

मूल्य : २५/-

मुद्रक : अमृत ऑफसेट, ५६८, मढ़ाताल, जबलपुर (म. प्र.)
फोन : ०७६१ - २४१३६४३

॥ श्री रामः शरणं मम ॥

अनुसार

आज के युग का मानव एवं समाज उत्तरोत्तर दिग्मूढ़ होकर मूल्यहीनता के गम्भीर गर्त में गिरता जा रहा है। 'स्वार्थ' का दानव अपना विकराल मुँह फैलाए - मनुष्य की सुख-शांति को निगलता जा रहा है। हम पाश्चात्य देशों की भौतिक उन्नति-समृद्धि की चकाचौंध से प्रभावित होकर भोगवादी संस्कृति में अपनी अनुरक्ति बढ़ा रहे हैं। भूमण्डलीकरण और बाजारवाद के इस दौर में मनुष्य स्वयं एक वस्तु बन गया है। त्याग, समर्पण, परहित, प्रेम, आदर्श एवं नैतिकता जैसे शब्द आज शब्दकोष तक सीमित होते जा रहे हैं, और सत्य यह है कि मानवीय मूल्य ही आदर्श मानव समाज के विकास और प्रगति के मूल आधार हैं।

श्रीराम का चरित्र और श्रीराम की कथा ही इनका अक्षय कोष है जो हमें सुदृढ़ एवं सुसंस्कृत बनाती है। भारतीय संस्कृति एवं समाज के विकास में रामकथा का अप्रतिम योगदान रहा है। रामकथा की लोकप्रियता सर्वविदित है। भारत ही नहीं, विश्व के अनेक देशों में शताब्दियों से रामकथा का प्रचार-प्रसार होता रहा है।

युग तुलसी स्वनामधन्य परम पूज्य श्रीरामकिंकर जी महाराज श्रीरामचरितमानस के सर्वमान्य, सर्वोपरि विद्वान् हैं। "रामकथा के प्रति उनकी अपनी दर्शन-दृष्टि है, जो विलक्षण है। परम पूज्य महाराज श्री ने जो मूल्यपरक चिंतन दिया है, उसके द्वारा राष्ट्र एवं समाज का हित तो होगा ही, उनके विचारों के आलोक से समाज को एक नई प्रेरणा, गति एवं स्फूर्ति भी मिलेगी। परम पूज्य महाराजश्री के साहित्य का अनुवाद गुजराती, मराठी, उड़िया और अंग्रेजी भाषा में तो हो ही चुका है, अन्य अनेक भाषाओं में भी कार्य प्रगति पर है।

परम पूज्य महाराजश्री के साहित्य पर निरंतर अनुशीलन अत्यन्त आवश्यक है। अनेक विद्यार्थियों ने पी.एच.डी. और डी.लिट् की उपाधि प्राप्त कर ली है और इस कार्य की महत्ता और गुणवत्ता समझकर - मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश के अनेक विश्वविद्यालयों में शोधपीठ की स्थापना हो रही है।

स्वार्थ और परमार्थ दोनों की प्राप्ति कराने वाला संतुलित चिंतन व्यक्ति

की कामना पूर्ति का मार्ग बनाते हुए, राष्ट्रहित और समाज का कल्याण कैसे हो, ऐसा विलक्षण जीवन दर्शन परम पूज्य महाराजश्री ने प्रदान किया है।

परम पूज्य महाराजश्री ने सगुण लीला - इस धरती पर ७८ वर्षों तक की, और संप्रति वे श्रीराम की दिव्य भूमि, श्री अयोध्याधाम में सरयू के तट पर माँ जानकीजी की गोद में (रामायणम् धाम में) समाधिस्त होकर अपने सत्संकल्पों और अधूरे स्वप्नों का ऐसा दिग्दर्शन कर रहे हैं; जिसमें दिव्य चेतना और उपस्थिति का दर्शन निकट और सुदूर बैठे हुए अनेक प्रेमी सुजनों/स्वजनों को उनका अनुभव, बोध भी हो रहा है।

उनमें से ऐसे सुजन पात्र हैं - श्रीमती अंजू एवं श्री अरुण गणात्रा (लन्दन स्थित परम पूज्य महाराजश्री के निष्ठावान् भक्त दम्पति) जो परम पूज्य महाराजश्री के चिंतन को व्यापक बनाने में समर्पित हैं। उन्हीं के योगदान से ये नयी पुस्तिकायें लघुरूप में छपी हैं। ताकि समय के मारे आज की भागदौड़ में लगे हुए मानव को अमृत की एक बूँद भी मिल जाये तो भी उसका कलिकाल में कल्याण हो जायेगा। परम पूज्य महाराजश्री के चरणों में प्रार्थना है कि उनकी ऐसी सद्बुद्धि, सुमति, सद्भाव और सद्विचार बने रहें।

रामायणम् ट्रस्ट के सभी ट्रस्टीगण इस सद्कार्य में लोकमंगल के लिये समर्पित हैं। समाज के प्रत्येक वर्ग के सहयोग से, यह कठिन कार्य संभव हो पा रहा है, और यही सभी सुधी जनों से प्रार्थना है कि भविष्य में भी तन, मन, धन से आपका सहयोग निरंतर मिलता रहेगा, ऐसा विश्वास है।

आश्रमवासी सभी सेवकवृन्द अथक भाव से परम पूज्य महाराजश्री की सेवा में समर्पित हैं। श्री नरेन्द्र शुक्ल, श्री जयप्रकाश शुक्ल, श्री विनय शुक्ल, श्री टी. एन. अग्रवाल, श्री मुकेश शर्मा और श्री राधेश्याम को भी मेरा हार्दिक आशीर्वाद! अंत में परम पूज्य सद्गुरुदेव भगवान् के श्री चरणों में एक ही प्रार्थना -

हम चातक तुम स्वाति घन, अपनी बस यह आस।
तुम बरसौ चिरकाल तक, बुझै न मन की प्यास।।

सदैव श्री सद्गुरु शरण में. . .

- मन्दाकिनी श्रीरामकिंकरजी

।। श्री रामः शरणं मम ।।

महाराज श्री : एक परिचय

प्रभु की कृपा और प्रभु की वाणी का यदि कोई सार्थक पर्यायवाची शब्द ढूँढ़ा जाए, तो वह हैं - प्रज्ञापुरुष, भक्तितत्त्व द्रष्टा, सन्त प्रवर, 'परमपूज्य महाराजश्री रामकिंकर जी उपाध्याय।' अपनी अमृतमयी, धीर, गम्भीर-वाणी-माधुर्य द्वारा भक्ति रसाभिलाषी-चातकों को, जनसाधारण एवं बुद्धिजीवियों को, नानापुराण निगमागम षट्शास्त्र वेदों का दिव्य रसपान कराकर रससिक्त करते हुए, प्रतिपल निज व्यक्तित्व व चरित्र में श्रीरामचरितमानस के ब्रह्म राम की कृपामयी विभूति एवं दिव्यलीला का भावात्मक साक्षात्कार करानेवाले पूज्य महाराज श्री आधुनिक युग के परम तेजस्वी मनीषी, मानस के अद्भुत शिल्पकार, रामकथा के अद्वितीय अधिकारी व्याख्याकार हैं।

भक्त-हृदय, रामानुरागी पूज्य महाराजश्री ने अपने अनवरत अध्यवसाय से श्रीरामचरितमानस की मर्मस्पर्शी भाव-भागीरथी बहाकर अखिल विश्व को अनुप्राणित कर दिया है। आपने शास्त्र दर्शन, मानस के अध्ययन के लिये जो नवीन दृष्टि और दिशा प्रदान की है, वह इस युग की एक दुर्लभ अद्वितीय उपलब्धि है-

धेनवः सन्तु पन्थानः दोग्धा हुलसिनन्दनः।
दिव्यराम-कथा दुग्धं प्रस्तोता रामकिंकरः।।

जैसे पूज्य महाराजश्री का अनूठा भाव दर्शन वैसे ही उनका जीवन दर्शन अपने आप में एक सम्पूर्ण काव्य है। आपके नामकरण में ही जैसे श्री हनुमानूजी की प्रतिच्छाया दर्शित होती है, वैसे ही आपके जन्म की गाथा में ईश्वर कारण प्रकट होता है। आपका जन्म १ नवम्बर सन् १६२४ को जबलपुर (मध्यप्रदेश) में हुआ। आपके पूर्वज मिर्जापुर के बरैनी नामक गाँव के निवासी थे। आपकी माता परम भक्तिमती श्री धनेसरा देवी एवं पिता पूज्य पं. शिवनायक उपाध्यायजी रामायण के सुविज्ञ व्याख्याकार एवं हनुमानूजी महाराज के परम भक्त थे। ऐसी मान्यता है कि श्रीहनुमानूजी के प्रति उनके पूर्ण समर्पण एवं अविचल भक्तिभाव के कारण उनकी बढ़ती अवस्था में श्रीहनुमत्जयन्ती के ठीक सातवें दिन उन्हें एक विलक्षण प्रतिभायुक्त पुत्ररत्न की प्राप्ति दैवी कृपा से हुई। इसीलिए उनका नाम **'रामकिंकर'**

अथवा **राम का सेवक** रखा गया।

जन्म से ही होनहार व प्रखर बुद्धि के आप स्वामी रहे हैं। आपकी शिक्षा-दीक्षा जबलपुर व काशी में हुई। स्वभाव से ही अत्यन्त संकोची एवं शान्त प्रकृति के बालक रामकिंकर अपनी अवस्था के बच्चों की अपेक्षा कुछ अधिक गम्भीर थे। एकान्तप्रिय, चिन्तनरत, विलक्षण प्रतिभावाले सरल बालक अपनी शाला में अध्यापकों के भी अत्यन्त प्रिय पात्र थे। बाल्यावस्था से ही आपकी मेधाशक्ति इतनी विकसित थी कि क्लिष्ट एवं गम्भीर लेखन, देश-विदेश का विशद साहित्य अल्पकालीन अध्ययन में ही आपके स्मृति पटल पर अमिट रूप से अंकित हो जाता था। प्रारम्भ से ही पृष्ठभूमि के रूप में माता-पिता के धार्मिक विचार एवं संस्कारों का प्रभाव आप पर पड़ा, परन्तु परम्परानुसार पिता के अनुगामी वक्ता बनने का न तो उनका कोई संकल्प था, न कोई अभिरुचि।

कालान्तर में विद्यार्थी जीवन में पूज्य महाराजश्री के साथ एक ऐसी चमत्कारिक घटना हुई कि जिसके फलस्वरूप आपके जीवन ने एक नया मोड़ लिया। १८ वर्ष की अल्प अवस्था में जब पूज्य महाराजश्री अध्ययनरत थे, तब अपने कुलदेवता श्री हनुमान्‌जी महाराज का आपको अलौकिक स्वप्नदर्शन हुआ, जिसमें उन्होंने आपको वटवृक्ष के नीचे शुभासीन करके दिव्य तिलक कर आशीर्वाद देते हुए कथा सुनाने का आदेश दिया। स्थूल रूप में इस समय आप बिलासपुर में अपने पूज्य पिता के साथ छुट्टियाँ मना रहे थे। यहाँ पिताश्री की कथा चल रही थी। ईश्वरीय संकल्पानुसार परिस्थिति भी अचानक कुछ ऐसी बन गई कि अनायास ही, पूज्य महाराजश्री के श्रीमुख से भी पिताजी के स्थान पर कथा कहने का प्रस्ताव एकाएक निकल गया।

आपके द्वारा श्रोता समाज के सम्मुख यह प्रथम भाव प्रस्तुति थी। किन्तु कथन शैली व वैचारिक शृंखला कुछ ऐसी मनोहर बनी कि श्रोतासमाज विमुग्ध होकर, तन-मन व सुध-बुध खोकर उसमें अनायास ही बँध गया। आप तो रामरस की भावमाधुरी की बानगी बनाकर, वाणी का जादू कर मौन थे, किन्तु श्रोता समाज आनन्दमग्न होने पर भी अतृप्त था। इस प्रकार प्रथम प्रवचन से ही मानस प्रेमियों के अन्तर में गहरे पैठकर आपने अभिन्नता स्थापित कर ली।

ऐसा भी कहा जाता है कि २० वर्ष की अल्प अवस्था में आपने एक और स्वप्न देखा, जिसकी प्रेरणा से आपने गोस्वामी तुलसीदास के ग्रन्थों के प्रचार एवं उनकी खोजपूर्ण व्याख्या में ही अपना समस्त जीवन समर्पित कर देने का दृढ़ संकल्प कर लिया। यह बात अकाट्य है कि प्रभु की प्रेरणा और संकल्प से जिस कार्य का शुभारम्भ होता है, वह मानवीय स्तर से कुछ अलग ही गति-प्रगति वाला होता है। शैली की नवीनता व चिन्तनप्रधान विचारधारा के फलस्वरूप आप शीघ्र ही विशिष्टतः आध्यात्मिक जगत् में अत्यधिक लोकप्रिय हो गए।

ज्ञान-विज्ञान पथ में पूज्यपाद महाराजश्री की जितनी गहरी पैठ थी, उतना ही प्रबल पक्ष, भक्ति साधना का, उनके जीवन में दर्शित होता है। वैसे तो अपने संकोची स्वभाव के कारण उन्होंने अपने जीवन की दिव्य अनुभूतियों का रहस्योद्घाटन अपने श्रीमुख से बहुत आग्रह के बावजूद नहीं किया। पर कहीं-कहीं उनके जीवन के इस पक्ष की पुष्टि दूसरों के द्वारा जहाँ-तहाँ प्राप्त होती रही। उसी क्रम में उत्तराखण्ड की दिव्य भूमि ऋषिकेश में श्रीहनुमान्‌जी महाराज का प्रत्यक्ष साक्षात्कार, निष्काम भाव से किए गए, एक छोटे से अनुष्ठान के फलस्वरूप हुआ! वैसे ही श्री चित्रकूट धाम की दिव्य भूमि में अनेकानेक अलौकिक घटनाएँ परम पूज्य महाराजश्री के साथ घटित हुईं। जिनका वर्णन महाराजश्री के निकटस्थ भक्तों के द्वारा सुनने को मिला! परमपूज्य महाराजश्री अपने स्वभाव के अनुकूल ही इस विषय में सदैव मौन रहे।

प्रारम्भ में भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य लीलाभूमि वृन्दावन धाम के परमपूज्य महाराजश्री, ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी महाराज के आदेश पर आप वहाँ कथा सुनाने गए। वहाँ एक सप्ताह तक रहने का संकल्प था। पर यहाँ के भक्त एवं साधु-सन्त समाज में आप इतने लोकप्रिय हुए कि उस तीर्थधाम ने आपको ग्यारह माह तक रोक लिया। उन्हीं दिनों में आपको वहाँ के महान् सन्त अवधूत श्रीउड़िया बाबाजी महाराज, भक्त शिरोमणि श्रीहरिबाबाजी महाराज, स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी महाराज को भी कथा सुनाने का सौभाग्य मिला। कहा जाता है कि अवधूत पूज्य श्रीउड़िया बाबा, इस होनहार बालक के श्रीमुख से निःसृत, विस्मित कर देने वाली वाणी से इतने अधिक प्रभावित थे कि वे यह मानते थे कि यह किसी पुरुषार्थ या प्रतिभा का परिणाम न होकर के शुद्ध भगवत्कृपा का प्रसाद है। उनके शब्दों में-**"क्या तुम समझते हो, कि यह बालक बोल रहा है? इसके माध्यम से तो साक्षात् ईश्वरीय वाणी का अवतरण हुआ है।"**

इसी बीच अवधूत श्रीउड़िया बाबा से संन्यास दीक्षा ग्रहण करने का संकल्प

आपके हृदय में उदित हुआ और परमपूज्य बाबा के समक्ष अपनी इच्छा प्रकट करने पर बाबा के द्वारा लोक एवं समाज के कल्याण हेतु उन्हें शुद्ध संन्यास वृत्ति से जनमानस-सेवा की आज्ञा मिली।

सन्त आदेशानुसार एवं ईश्वरीय संकल्पानुसार मानस प्रचार-प्रसार की सेवा दिन-प्रतिदिन चारों दिशाओं में व्यापक होती गई। इसी बीच काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से आपका सम्पर्क हुआ। काशी में प्रवचन चल रहा था। इस गोष्ठी में एक दिन भारतीय पुरातत्त्व और साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् एवं चिन्तक श्री वासुदेव शरण अग्रवाल आपकी कथा सुनने के लिये आए और आपकी विलक्षण एवं नवीन चिन्तन शैली से वे इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति श्री वेणीशंकर झा एवं रजिस्ट्रार श्री शिवनन्दनजी दर से Prodigious (विलक्षण प्रतिभायुक्त) प्रवक्ता के प्रवचन का आयोजन विश्वविद्यालय प्रांगण में रखने का आग्रह किया। आपकी विद्वत्ता इन विद्वानों के मनोमस्तिष्क को ऐसे उद्वेलित कर गई कि आपको अगले वर्ष से 'विजिटिंग प्रोफेसर' के नाते काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में व्याख्यान देने के लिये निमन्त्रित किया गया। इसी प्रकार काशी में आपका अनेक सुप्रसिद्ध साहित्यकार जैसे श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी, श्री महादेवी वर्मा से साक्षात्कार एवं शीर्षस्थ सन्तप्रवर का सान्निध्य भी प्राप्त हुआ।

परम पूज्य महाराजश्री परम्परागत कथावाचक नहीं हैं, क्योंकि कथा उनका साध्य नहीं, साधन है। उनका उद्देश्य है भारतीय जीवन पद्धति की समग्र खोज अर्थात् भारतीय मानस का साक्षात्कार। उन्होंने अपने विवेक प्रदीप्त मस्तिष्क से, विशाल परिकल्पना से श्रीरामचरितमानस के अन्तर्रहस्यों का उद्‌घाटन किया है। आपने जो अभूतपूर्व एवं अनूठी दिव्य दृष्टि प्रदान की है, जो भक्ति-ज्ञान का विश्लेषण तथा समन्वय, शब्द ब्रह्म के माध्यम से विश्व के सम्मुख रखा है, उस प्रकाश स्तम्भ के दिग्दर्शन में आज सारे इष्ट मार्ग आलोकित हो रहे हैं! आपके अनुपम शास्त्रीय पाण्डित्य द्वारा, न केवल आस्तिकों का ही ज्ञानवर्धन होता है अपितु नयी पीढ़ी के शंकालु युवकों में भी धर्म और कर्म का भाव संचित हो जाता है। **'कीरति भनिति भूति भलि सोई'**....के अनुरूप ही आपको ज्ञान की सुरसरि अपने उदार व्यक्तित्व से प्रबुद्ध और साधारण सभी प्रकार के लोगों में प्रवाहित करके 'बुध विश्राम' के साथ-साथ **'सकल जन रंजनी'** बनाने में यत्नरत रहे हैं। मानस सागर में बिखरे हुए विभिन्न रत्नों को सँजोकर आपने अनेक आभूषण रूपी ग्रन्थों की सृष्टि की है। मानस-मन्थन, मानस-चिन्तन, मानस-दर्पण, मानस-मुक्तावली और मानस-चरितावली जैसी आपकी अनेकानेक अमृतमयी लगभग १०० अमर कृतियाँ हैं जो दिग्‌दिगन्तर तक प्रचलित रहेंगी। आज भी वह लाखों लोगों को रामकथा का अनुपम पीयूष वितरण कर रही हैं और भविष्य में भी अनुप्राणित एवं प्रेरित करती रहेंगी। तदुपरान्त अन्तर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन नामक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के भी आप अध्यक्ष रहे।

निष्कर्षतः आप अपने प्रवचन, लेखन और सम्प्रति शिष्य परम्परा द्वारा जिस रामकथा पीयूष का मुक्तहस्त से वितरण कर रहे हैं, वह जन-जन के तप्त एवं शुष्क मानस में नवशक्ति का सिंचन और शान्ति प्रदान कर समाज में आध्यात्मिक एवं दार्शनिक चेतना जाग्रत् कर रही है।

परम पूज्य महाराजश्री का स्वर उसी वंशी के समान है, जो 'स्वर सन्धान' कर सभी को मन्त्रमुग्ध कर देती है। वंशी में भगवान् का स्वर ही गूँजता है। उसका कोई अपना स्वर नहीं होता। परमपूज्य महाराजश्री भी एक ऐसी ही वंशी हैं, जिसमें भगवान् के स्वर का स्पन्दन होता है। साथ-साथ उनकी वाणी के तरकश से निकले, वे तीक्ष्ण विवेक के बाण अज्ञान-मोह-जन्य पीड़ित जीवों की भ्रान्तियों, दुर्वृत्तियों एवं दोषों का संहार करते हैं। यों आप श्रद्धा और भक्ति की निर्मल मन्दाकिनी प्रवाहित करते हुए महान् लोक-कल्याणकारी कार्य सम्पन्न कर रहे हैं।

रामायणम् ट्रस्ट परम पूज्य महाराजश्री रामकिंकरजी द्वारा संस्थापित एक ऐसी संस्था है जो तुलसी साहित्य और उसके महत् उद्देश्यों को समर्पित है। मेरा मानना है कि परम पूज्य महाराजश्री की लेखनी से ही तुलसीदासजी को पढ़ा जा सकता है और उन्हीं की वाणी से उन्हें सुना भी जा सकता है। महाराजश्री के साहित्य और चिन्तन को समझे बिना तुलसीदासजी के हृदय को समझ पाना असम्भव है।

रामायणम् आश्रम अयोध्या जहाँ महाराजश्री ने ६ अगस्त सन् २००२ को समाधि ली वहाँ पर अनेकों मत-मतान्तरों वाले लोग जब साहित्य प्राप्त करने आते हैं तो महाराजश्री के प्रति वे ऐसी भावनाएँ उड़ेलते हैं कि मन होता है कि महाराजश्री को इन्हीं की दृष्टि से देखना चाहिए। वे अपना सबकुछ न्यौछावर करना चाहते हैं उनके चिन्तन पर। महाराजश्री के चिन्तन ने रामचरितमानस के पूरे घटनाक्रम को और प्रत्येक पात्र की मानसिकता को जिस तरह से प्रस्तुत किया है उसको

पढ़कर आपको ऐसा लगेगा कि आप उस युग के एक नागरिक हैं और वे घटनाएँ आपके जीवन का सत्य हैं।

हम उन सभी श्रेष्ठ वक्ताओं के प्रति भी अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं जो महाराजश्री के चिन्तन को पढ़कर प्रवचन करते हैं और मंच से उनका नाम बोलकर उनकी भावनात्मक आरती उतारकर अपने बड़प्पन का परिचय देते हैं।

रामायणम् ट्रस्ट के सभी ट्रस्टीगण इस भावना से ओत-प्रोत हैं कि ट्रस्ट की सबसे प्रमुख सेवा यही होनी चाहिए कि वह एक स्वस्थ चिन्तन के प्रचार-प्रसार में जनता को दिशा एवं दृष्टि दे और ऐसा सन्तुलित चिन्तन परम पूज्य श्रीरामकिंकरजी महाराज में प्रकाशित होता और प्रकाशित करता दिखता है। सभी पाठकों के प्रति मेरी हार्दिक मंगलकामनाएँ!

प्रभु की शरण में
- मन्दाकिनी श्रीरामकिंकरजी

।। श्री रामः शरणं मम।।

श्री हनुमान् जी महाराज

श्री हनुमान्जी महाराज की भूमिका **'श्रीरामचरितमानस'** में इतनी अद्भुत है कि उसकी कितनी भी चर्चा की जाय वह कभी पूरी नहीं की जा सकती। जैसी विलक्षणता श्री हनुमान्जी के चरित्र में है, वैसी किसी बिरले भक्त या महापुरुष के जीवन में ही पायी जा सकती है। 'श्रीरामचरितमानस' में चार घाटों की कल्पना की गयी है। जैसे किसी सरोवर में चार घाट बने हुए हों तथा उसमें भिन्न-भिन्न दिशाओं से, भिन्न-भिन्न सीढ़ियों से उतरकर व्यक्ति सरोवर का उपयोग करता है। उसी प्रकार से गोस्वामीजी 'श्रीरामचरितमानस' की तुलना मानसरोवर से करते हैं, परन्तु अन्तर यह करते हैं कि हिमालय के मानसरोवर में सीढ़ियाँ नहीं हैं और उन्होंने श्रीरामचरित रूपी मानसरोवर में सीढ़ियों का निर्माण किया तथा सीढ़ियों के माध्यम से भिन्न-भिन्न दिशाओं से आये हुए साधकों को श्रीरामचरित के सरोवर में स्नान करने के लिये निमन्त्रित किया। वे चार घाट हैं - ज्ञान, भक्ति एवं कर्म तथा इन तीनों के साथ-साथ उन्होंने शरणागति के रूप में एक चौथे घाट की भी कल्पना की।

प्राचीन काल में सरोवर पर तीन ओर मनुष्यों को जल पीने के लिये मार्ग बनाया जाता था और चौथी ओर पशुओं के लिये बिना किसी सीढ़ी का एक घाट बनाया जाता था। आपने प्राचीन सरोवरों में देखा होगा कि तीन ओर तो सीढ़ी होती है, पर चौथी ओर सीढ़ी न होकर सपाट घाट हुआ करते हैं जिससे उतरकर पशु भी जल पी सकें। गोस्वामीजी की मान्यता यह है कि ज्ञान, भक्ति और कर्म की दृष्टि से तो श्रीराम के तत्त्व, चरित्र और स्वरूप का चिन्तन किया ही जा सकता है, परन्तु इन तीनों के अभाव में यदि किसी को असमर्थता की अनुभूति हो अर्थात् जो सीढ़ियों से उतरने में असमर्थ हैं तो उनके लिये चौथे घाट का निरूपण किया गया। ज्ञान, भक्ति और कर्म में साधना के सोपान या क्रम हैं, एक के बाद दूसरी साधना कैसे की जाय? इन तीनों में भी एक क्रम है। जिनके

जीवन में इन तीनों के अभाव की अनुभूति हो रही हो, वे क्या करें? उनके लिये गोस्वामीजी एक ऐसे घाट की भी कल्पना करते हैं जिसमें साधना की सीढ़ियों का अभाव है और बिल्कुल सहज भाव से उतरकर वह भी जल पीकर धन्य हो सकता है। गोस्वामीजी अपने आपको इसी घाट से जोड़ते हैं क्योंकि अपने स्वयं के बारे में उनकी मान्यता यह है कि वे ज्ञान, भक्ति या कर्म के अधिकारी नहीं हैं। उन्होंने **शरणागति** या **दैन्य** के मार्ग-इस चौथे घाट-से भगवान् के चरित्रा और स्वभाव का आनन्द पाया।

यदि आपमें विचार की सामर्थ्य है तो उसका सदुपयोग कीजिए, यह **ज्ञान** मार्ग है। यदि आपमें भावना की सामर्थ्य है तो उसका सदुपयोग कीजिए, **भक्ति** के माध्यम से। यदि आपमें पुरुषार्थ और कर्म की क्षमता है तो आप उसका सदुपयोग कीजिए, **कर्म** के माध्यम से। ये तो सामर्थ्य की बातें हुईं, लेकिन अगर असमर्थता की अनुभूति हो रही हो तो भी आप भगवान् की कृपा से भगवान् को प्राप्त करते हैं। जो असमर्थ व्यक्ति भगवान् को प्राप्त करता है, वह अपनी साधना और सामर्थ्य से भगवान् को प्राप्त नहीं करता, बल्कि भगवान् की कृपा से ही भगवान् को प्राप्त करता है। भक्ति, ज्ञान और कर्म में जहाँ साधना को महत्त्व प्राप्त है, वहाँ चौथे मार्ग में साधना के स्थान पर कृपा को ही सब कुछ स्वीकार किया गया है। इस प्रकार उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति को अर्थात् समर्थ और असमर्थ दोनों को ही भगवान् की ओर अग्रसर करने की चेष्टा की है। समर्थ भी श्रीराम के द्वारा धन्य हो सकता है और असमर्थ भी।

'रामायण' में चार आचार्यों की भी कल्पना की गयी - **ज्ञानघाट** के आचार्य श्री शंकरजी, **भक्तिघाट** के श्री काकभुशुण्डिजी, **कर्मघाट** के श्री याज्ञवल्क्यजी और **शरणागति** तथा **दैन्यघाट** के श्री गोस्वामीजी स्वतः हैं। यदि हम श्री हनुमान्जी के सम्बन्ध में विचार करें कि श्री हनुमान्जी इन चार घाटों में से किस घाट के आचार्य हैं? या किस साधना पद्धति के द्वारा वे भगवान् के पास पहुँचने का पथ प्रशस्त करते हैं? तो हनुमान्जी के चरित्र में यह विलक्षणता मिलेगी कि कर्म की दृष्टि से देखें तो उनमें कर्म की पूर्णता है, यदि भक्ति की दृष्टि से देखें तो उनमें भक्ति की पूर्णता है, ज्ञान की दृष्टि से देखें तो उनमें ज्ञान की पूर्णता है और शरणागति की दृष्टि से देखें तो उनमें दैन्य और शरणागति की भी पराकाष्ठा है। इन चारों का एक ही पात्र में जो अद्भुत समन्वय आपको मिलेगा, वह श्री हनुमान्जी हैं। इसीलिए श्री हनुमान्जी जिन लोगों को भगवान्

से मिलाते हैं, उनमें बड़ी भिन्नता होती है।

हनुमान्जी के चरित्र में एक सूत्र आपको और मिलेगा कि हनुमान्जी का रूप सर्वदा बदलता रहता है। वे ही हनुमान्जी कहीं लघु हैं, कहीं अति लघु हैं, ये दोनों शब्द भी आपको मिलेंगे। लंका जलाने के पश्चात्-

पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि।
जनकसुता कें आगें ठाढ़ भयउ कर जोरि।। ५/२६

यहाँ 'लघु' शब्द का प्रयोग है और जब लंका में पैठने लगे तब सुरसा के सामने पहले तो विशल रूप प्रकट करते हैं, परन्तु जब सुरसा ने सौ योजन का मुँह फैलाया तो हनुमान्जी ने लघु नहीं 'अति लघु' रूप बनाया-

सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा।
अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा।। ५/१/१०

कभी लघु बन जाते हैं, कभी अति लघु, कभी विशाल बन जाते हैं और उसमें भी कभी बड़े होते हुए हल्के होते हैं तो कभी भारी भी होते हैं। क्या यह हनुमान्जी में कोई जादूगरी है? समुद्र लाँघने के पूर्व वे विशाल भी बने और उस समय विशाल बनने के साथ-साथ उनका भार इतना था कि लिखा गया-

जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता।
चलेउ सो गा पाताल तुरंता।। ५/०/७

जिस पर्वत पर चरण रखकर हनुमान्जी छलाँग लगाते हैं, वह पर्वत हनुमान्जी के बोझ से तुरन्त पाताल चला गया। यहाँ हनुमान्जी विशाल भी हैं और भारी भी और जब लंका जलाने लगे तो विशाल तो इतने बन गये कि-

हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास।। ५/२५

हनुमान्जी ने अपने शरीर को इतना बड़ा बना लिया कि वे आकाश को छूने लगे। ऐसा लगा कि समुद्र लाँघते समय भी बड़े बने थे और अब लंका जलाते समय भी बहुत बड़े बन गये, परन्तु नहीं, दोनों में एक अन्तर है कि समुद्र लाँघते समय वे विशाल भी थे और भारी भी, परन्तु लंका जलाते समय विशाल तो थे, परन्तु-

देह बिसाल परम हरुआई।
मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई।।५/२५/१

शरीर जितना ही विशाल है, भार की दृष्टि से वे उतने ही हल्के हैं। इस प्रकार

अलग-अलग रूपों में जो हनुमानूजी का दर्शन है, इसका तात्त्विक अभिप्राय यह है कि ये जो चार पक्ष हैं, हनुमानूजी इन चारों पक्षों के आचार्य हैं और जिस समय जिस समस्या का समाधान करने के लिये जिस पक्ष को प्रधानता देनी चाहिए, हनुमानूजी उसी को प्रधानता देते हैं। अगर गहराई से विचार करके देखें तो चारों योगों में मुख्यता भले ही किसी एक को दी जाय, परन्तु आवश्यकता है इन चारों योगों की या चारों मार्गों के समन्वय की।

जिस योग का उपयोग जिस समय किया जाना चाहिए, अगर व्यक्ति उस योग का सही-सही उपयोग करेगा तो वह योग कल्याणकारी होगा और यदि असमय में या जिस समय उस योग का प्रयोग नहीं करना चाहिए, यदि उसका प्रयोग करे तो वह कल्याणकारी सिद्ध नहीं होगा। एक व्यावहारिक दृष्टान्त आपको दें कि एक ओर वैराग्य और शरीर का मिथ्यात्व है, शरीर और संसार मिथ्या है, अनित्य है, आदि बातें कही जाती हैं। वैराग्य का मुख्य रूप से ज्ञान से सम्बन्ध है, लेकिन यदि हम किसी डाक्टर या वैद्य के पास अपना रोग लेकर जायँ और वह हमें शरीर के मिथ्यात्व का उपदेश देने लगे कि शरीर तो नाशवान् है, एक न एक दिन तो शरीर की मृत्यु होनी ही है, तुम शरीर की चिन्ता क्यों करते हो? तो कौन उस डाक्टर के पास बैठना पसन्द करेगा? उस समय वैराग्य की अपेक्षा नहीं है, डाक्टर को शरीर की अनित्यता का उपदेश नहीं देना चाहिए। वैराग्य का भाषण देना, उसका काम नहीं है। हमारे शास्त्र तो दोनों स्तर की बातें करते हैं। शास्त्र यह भी कहते हैं कि -

शरीमाद्यं खलु धर्मसाधनम्। - कुमारसम्भवम्

समस्त धर्मों का मूल तो यह शरीर है, शरीर की रक्षा करो और कहीं कह देते हैं -

देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽभिमतिं त्यजत्वं।
जायासुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च।।
पश्यानिशं जगदिदं क्षणभंगनिष्ठं।
वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः।।

- श्रीमद्भागवत माहात्म्य, ५/७६

तो **'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'** सत्य है कि शरीर का मिथ्यात्व सत्य है। जिस समय व्यक्ति रोगग्रस्त है, उस समय शरीर के मिथ्यात्व को सामने रखकर उसकी चिकित्सा नहीं की जायेगी, बल्कि शरीर को सत्य मानकर ही दवा

देकर उसको स्वस्थ करने की चेष्टा की जायेगी। उसी प्रकार से शरीर तो नाशवान् है और शरीर एक दिन मिट गया और उस समय आकर कोई दवा की प्रशंसा करने लगे, दवा के चमत्कार का वर्णन करने लगे तो इससे बढ़कर नासमझी और क्या हो सकती है? जब शरीर समाप्त हो गया तो उस समय तो वैराग्य के माध्यम से ही व्यक्ति को सन्तोष मिलेगा और जब शरीर रोगग्रस्त है तो उसके लिये तो चिकित्साशास्त्र की आवश्यकता है, वहाँ वेदान्तशास्त्र के वैराग्य की अपेक्षा नहीं है। वस्तुतः उपयुक्त समय में ही उपयुक्त योग का उपयोग होना चाहिए। कुछ लोगों को तो किसी योग का अजीर्ण हो जाता है कि वे हर क्षण केवल अपनी ही बात दोहराते हैं। वे अव्यावहारिक व्यक्ति हैं। मुझे वह बात भूलती नहीं है कि मेरे एक परिचित ने नया मकान बनवाया। उसमें उत्सव मनाने के लिये संगीत का आयोजन किया तो एक गायक ने बिन्दुजी का एक प्रसिद्ध पद गाना शुरू किया कि-

अरे मन यह दो दिन का मेला रहेगा।
न कायम ये जग का झमेला रहेगा।।
कंधे पर ठठरी का ठेला रहेगा।।

लोगों ने सिर पीट लिया कि क्या यही गाने के लिये आपको बुलाया गया था? पद तो बड़ा सुन्दर और सत्य भी है, परन्तु ठीक अवसर पर नहीं गाया गया। ऐसे मांगलिक अवसर पर तो-

मंगल भवन अमंगल हारी। १/१११/४

यदि गायें तो व्यक्ति को सुनकर प्रसन्नता होगी। इसलिए इन योगों का प्रयोग जीवन में समुचित समय पर होना चाहिए। हनुमानूजी कब छोटे बनते हैं, ये सब अलग-अलग योग हैं। जहाँ वे बड़े हल्के बने, यह कर्मयोग है, जहाँ बड़े और भारी बने, वहाँ ज्ञानयोग है। जहाँ पर लघु बने, वहाँ भक्तियोग है और जहाँ पर अतिलघु बने वहाँ पर दैन्य और शरणागति का योग है। हनुमानूजी इन चारों योगों का उचित समय पर उपयोग करते हैं। इन चारों योगों का ऐसा समुचित उपयोग आपको अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगा। इस संदर्भ में मैं केवल थोड़े से संकेत आपके सामने रख दूँ।

श्रीहनुमानूजी जनकनन्दिनी सीताजी की खोज में जा रहे हैं, सीताजी जीवन में लक्ष्य रूप हैं। ज्ञानियों की भी लक्ष्य वही हैं, भक्त की और योगी की भी लक्ष्य वही हैं और कर्मयोगी की भी लक्ष्य वही हैं तथा शरणागति की भी परम प्राप्तव्य

वे ही हैं। ज्ञानियों की दृष्टि से श्रीशंकराचार्यजी कहते हैं कि सीताजी शान्ति हैं -

शान्तिसीता समानीता आत्मारामो विराजते।

अगर कोई व्यक्ति तत्त्वज्ञान के द्वारा शान्ति प्राप्त करना चाहता है तो सीताजी की खोज आवश्यक है। भक्त कहते हैं कि श्री सीताजी मूर्तिमती भक्ति हैं-

सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर।
भगति ग्यानु बैराग्य जनु सोहत धरें सरीर।।१/३२१

भक्त के लिये जीवन का लक्ष्य श्रीसीताजी हैं। योगाभ्यास यदि करें तो भी तुरीयावस्था पाना लक्ष्य है। 'पातंजलियोग-दर्शन' में तुरीयावस्था के माध्यम से ही ब्रह्मतत्त्व या आत्मतत्त्व का साक्षात्कार होता है, जिसको 'रामायण' में बताया गया है कि -

सुंदरीं सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन सहित बिराजहीं।।
छं. ३२४/४

यहाँ श्रीसीताजी तुरीयावस्था हैं और जो शरणागत हैं उनके लिये वे माँ हैं -"**जनक सुता जग जननि जानकी।**

यों भक्त के लिये वे भक्ति हैं, कर्मयोगी के लिये वह आदिशक्ति हैं, ज्ञानी के लिये वे शान्ति हैं, योगी के लिये वे तुरीयावस्था हैं और जो शरणागत रूप में नन्हें बालक हैं उनके लिये वे माँ हैं। सबको उनकी ही खोज करनी है। जब श्रीहनुमानुजी सीताजी की खोज में चलते हैं तो मार्ग में भिन्न-भिन्न प्रकार की समस्याएँ आती हैं और उनका समाधान हनुमानुजी अलग-अलग योगों द्वारा करते हैं। श्रीसीताजी लंका में हैं। बीच में चार सौ कोस का विशाल समुद्र है, जिसको पार करना है। समुद्र पार करने के लिये कौन सा योग उपयोगी है? सचमुच समुद्र को पार करना बड़ा कठिन है। यह समुद्र कौन-सा है? सचमुच समुद्र को पार करना बड़ा कठिन है। यह समुद्र कौन-सा है?-

कुणप-अभिमान सागर भयंकर घोर,
बिपुल अवगाह, दुस्तर अपारं। - विनय-पत्रिका,५८/२

. व्यक्ति का देहाभिमान ही सबसे बड़ा समुद्र है। इस देहाभिमान के समुद्र को पार किये बिना श्रीसीताजी का दर्शन नहीं होगा। देहाभिमान के समुद्र को कैसे पार करें? देहाभिमान पर विजय पाना इतना कठिन है कि बड़े से बड़े उत्कृष्ट कोटि के बन्दर जो देवताओं के अवतार भी हैं और गोस्वामीजी के शब्दों में जो विविध प्रकार के साधन हैं, वे समुद्र के किनारे तक तो पहुँच जाते हैं -

निज निज बल सब काहूँ भाषा।
पार जाइ कर संसय राखा।। ४/२८/६

अभिप्राय यह है कि बहुत सी बुराइयों को जीतने में जो समर्थ हैं, उनको भी देहाभिमान पर विजय पाना असम्भव प्रतीत होता है। श्री हनुमानुजी ही इस देहाभिमान के समुद्र को पार करने में समर्थ हुए। श्री हनुमानुजी ही इस देहाभिमान के समुद्र को पार करते हैं तो वहाँ पर भी सभी योगों का सामंजस्य है। जहाँ ज्ञानयोग के साथ-साथ जब हनुमानुजी इतना बड़ा पुरुषार्थ कर रहे हैं तो कर्मयोग भी है। यात्रा करते समय जब वे प्रभु का स्मरण कर रहे हैं तो भक्तियोग भी है। इस प्रकार उनमें सारे योगों का समन्वय है।

लंका-यात्रा में हनुमानुजी तीन पर्वत-शिखरों पर गये। पहले बन्दरों के साथ यात्रा की और स्वयंप्रभा के पास गये, उसके पूर्व पर्वत-शिखर पर गये और इसके बाद जब छलाँग लगाने लगे तो दूसरे पर्वत-शिखर पर चढ़े और जब छलाँग लगाकर सागर पार पहुँच गये तो लंका को देखने के लिये पर्वत के तीसरे शिखर पर चढ़े। ये यात्रा के तीन शिखर हैं। अलग-अलग प्रसंगों में अलग-अलग शिखर हैं। देहाभिमान के समुद्र को पार करने के पहले जरा देह से तो मुक्त हो जाइये! हमारे लिये देह का समुद्र पार करना ही कठिन हो रहा है फिर देहाभिमान की बात ही क्या? इस यात्रा में पहला पर्वत-शिखर क्या है? जब बन्दर मार्ग भूल गये और प्यास से व्याकुल हो गये तो हनुमानुजी पहले शिखर पर पहुँचे। यही है विश्वास का शिखर -

मन हनुमान कीन्ह अनुमाना।
मरन चहत सब बिनु जल पाना।।
चढ़ि गिरि शिखर चहूँ दिसि देखा। ४/२३/४

जब जीवन में कभी वन में मार्ग भूल जायँ, जैसे बन्दर मार्ग भूल गये तो क्या करना चाहिए? वन क्या है? रामायण की भाषा में यह वन संशय है -

संसय बिपिन अनल सुर रंजन। ६/११४/२

जीवन में यदि कभी संशय आ जाय, भटकाव आ जाय तो क्या करें? हनुमानुजी ने प्यासे बन्दरों के लिये उस भटकाव में एक उपाय सोचा। जीवन में जब कभी अतृप्ति का अनुभव हो, संशय का अनुभव हो तो क्या करें? हनुमानुजी यदि न होते तो बेचारे सब बन्दर क्या करते? प्रतापभानु भी जब भटक गया, प्यासा हुआ और मार्ग भूल गया तो अन्त में रावण बनना पड़ा, यह 'रामायण'

में हम पढ़ते हैं। यदि हनुमान्‌जी न होते तो पता नहीं बेचारे बन्दरों की क्या दशा होती? नीचे तो जल नहीं मिला, अब जरा ऊपर चढ़कर देखें। बन्दरों ने कहा कि ऊपर जल मिलेगा कि नहीं मिलेगा? आप ही जरा ऊपर चढ़कर देख आइये! हनुमान्‌जी चढ़े-

चढ़ि गिरि सिखर चहूँ दिसि देखा।
भूमि बिबर एक कौतुक पेखा।।४/२३/५

यह विश्वास का शिखर है। जब संशय के वन में हम भटकें तो हम ऊपर उठें और विश्वास के शिखर पर पहुँच जायँ। जब हनुमान्‌जी ने देखा कि जल के पक्षी उस गुफा में जा रहे हैं तो हनुमान्‌जी ने बन्दरों को निमन्त्रण दिया कि आइए! आइए!! इस गुफा में जल अवश्य है। अंगद आगे-आगे चल रहे थे, परन्तु गुफा में आगे चलने का साहस अंगद में नहीं था।, क्योंकि उनके परिवार में जो झगड़ा हुआ, वह गुफा को लेकर ही तो हुआ था। हनुमान्‌जी के नेतृत्व में ही सबने गुफा में प्रवेश किया और वहाँ सबको जल पीने को मिला और सीताजी के खोजने का उपाय भी स्वयंप्रभा से प्राप्त हुआ।

स्वयंप्रभा स्वयं प्रभु की कृपा है। जीवन में जब कभी भी संशय आये तो हम ऊपर विश्वास के शिखर पर जायँ। अन्त में भगवान् की कृपा से, भगवान् की शरणागति का जल पीकर, फल खाकर आगे कदम बढ़ायें। पहला शिखर विश्वास का शिखर है जहाँ पर भगवान् की कृपा ही कृपा दिखायी दे रही है। समुद्र लंघन के पूर्व हनुमान्‌जी दूसरे पर्वत-शिखर पर जाते हैं, यह दूसरा शिखर है विचार का। विचार के द्वारा ही देहाभिमान का समुद्र पार किया जाता है। तीसरा शिखर जिस पर हनुमान्‌जी समुद्र पार करने के पश्चात् चढ़े, वह तीसरा शिखर वैराग्य का है, जिस पर चढ़कर उन्होंने लंका को देखा। बहुत बढ़िया बात है। लंका को ऊपर से देखा, नीचे से नहीं। लंका कोई साधारण दुर्ग थोड़े ही है। जहाँ पर इतना वैभव है, इतनी सुन्दरता है कि -

नर नाग सुर गंधर्व कन्या रूप मुनि मन मोहहीं। ५/२ छं-२

कितना आकर्षण है? वहाँ कामिनी और कंचन दोनों का बड़ा दिव्य आकर्षण है। ऐसी लंका को यदि देखना हो तो देखते ही व्यक्ति फँस जायेगा। हनुमान्‌जी ने भी लंका को देखा, परन्तु वैराग्य के शिखर पर खड़े होकर लंका को देखा। यह बड़े महत्त्व का सूत्र है। इन वस्तुओं का आकर्षण जब आये तो वैराग्य के ऊँचे शिखर पर चढ़ जाना चाहिए। वैराग्य के शिखर पर जाने का परिणाम यह

हुआ कि हनुमान्‌जी ने निर्णय किया कि इस लंका को तो जला देना चाहिए। लंका को जला देने का जो संकल्प जाग्रत् हुआ, यह वैराग्य की ऊँचाइयों के कारण हुआ। हनुमान्‌जी तो-

महतो महीयान्। - कठोपनिषद्

इतने विशाल हैं कि देहाभिमान उनका क्या करेगा? हनुमान्‌जी बन्दरों को आश्वासन देते हैं और समुद्र के किनारे विचार का, एकत्व का, अद्वैत का जो महतो महीयान् रूप है, वह रूप हनुमान्‌जी के द्वारा प्रकट हुआ जो विशाल के साथ-साथ भारी है -

जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता।
चलेउ सो गा पाताल तुरंता।। ५/०/७

हनुमान्‌जी केवल ज्ञानी ही नहीं हैं, उनमें तत्त्वज्ञान का ही केवल आश्रय नहीं है। 'रामायण' की मान्यता है कि कितना भी बड़ा ज्ञानी क्यों न हो? अगर वह भक्ति की निन्दा करेगा तो -

जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी।।
७/१२/छं-३

वह तो ऊपर से जरूर नीचे गिरेगा। हनुमान्‌जी तो शिखर पर हैं। यहाँ बहुत बढ़िया उपाय गोस्वामीजी ने बताया। ऊपर उठना तो बहुत बढ़िया है, परन्तु जितना अधिक ऊपर उठेंगे उतना ही अधिक नीचे गिरने का डर भी बढ़ेगा। हनुमान्‌जी ने सोचा कि ऊपर चढ़ तो गये, लेकिन कोई सँभालने वाला भी तो चाहिए। तब गोस्वामीजी ने बहुत बढ़िया सूत्र दिया कि हनुमान्‌जी ने क्या किया? -

बार बार रघुबीर सँभारी।
तरकेउ पवन तनय बल भारी।। ५/०/६

बार-बार प्रभु का स्मरण किया। महतो महीयान् हो जाने के बाद भी हनुमान्‌जी के चरित्र में जो भक्ति का पक्ष दिखायी देता है उसी का आश्रय लेकर वे आगे बढ़ते हैं -

जिमि अमोघ रघुपति कर बाना।
एही भाँति चलेउ हनुमाना।। ५/०/८

बाण को देखकर लगता है कि बाण चल रहा है, परन्तु बुद्धिमान् व्यक्ति यह जानता है कि बाण में स्वयं चलने की शक्ति नहीं है। बाण धनुष के द्वारा

चलाया जाता है और धनुष धनुषधारी के द्वारा चलाया जाता है। चलाने वाले की भुजा में जितनी अधिक शक्ति है, बाण उतनी ही तीव्र गति से जाता है। हनुमानूजी ने कहा कि चलता हुआ तो मैं दिखायी देता हूँ, लेकिन मैं तो बाण हूँ जिसको चलाने वाले धनुषधारी हमारे प्रभु हैं और वे अपनी शक्ति के द्वारा जो कार्य मुझसे लेना चाहते हैं, मैं वही कार्य करने लगता हूँ। इस तरह से श्रीहनुमानूजी भक्ति-संयुक्त ज्ञान के आश्रय से उस देहाभिमान के समुद्र को पार करते हैं, अनेक विघ्न-बाधाओं को पार करते हैं। जब मैनाक पर्वत उनसे विश्राम करने के लिये कहता है तो तुरन्त सूत्र दे देते हैं कि -

हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम।। ५/१

यह है हनुमानूजी का भक्तियुक्त ज्ञानयोग, जिसमें कर्मयोग भी है, क्योंकि वे श्रेष्ठतम कर्म करते हुए भी ज्ञान और भक्ति का आश्रय लिये हुए हैं। इसके बाद सुरसा सामने आकर खड़ी हो गयी और कहा है कि मुझे भूख लगी है और देवताओं ने मुझसे कहा कि तुम उस बन्दर को जाकर खा लो। हनुमानूजी तब उससे प्रार्थना करते हैं कि अभी नहीं, बाद में खा लेना -

राम काजु करि फिरि मैं आवौं।
सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं।।
तब तव बदन पैठिहउँ आई।
सत्य कहउँ मोहि जान दे माई।। ५/१/४-५

सुरसा ने कहा कि मुझे भूख तो अभी लगी हुई है, तुम इतने आगे का आश्वासन दे रहे हो। मैं तो अभी खाऊँगी। पहले तो विनम्रता से सुरसा को समझाने की चेष्टा की, लेकिन जब सुरसा नहीं मानी तो हनुमानूजी ने चुनौती के शब्दों में कहा कि फिर खा क्यों नहीं लेती?-

ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना। ५/१/६

तुम यदि खा सकती हो तो खा लो। फिर सुरसा और हनुमानूजी में होड़ लग गयी-

जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा।
कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा।।
सोरह जोजन मुख तेहि ठयऊ।
तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ।।
जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा।

तासु दून कपि रूप देखावा।। ५/१/७/६

देहाभिमान के समुद्र को पार कर लिया और मैनाक के रूप में जो स्वर्ण का पर्वत था उसका भी लोभ हनुमानूजी के मन में उत्पन्न नहीं हुआ। इतना बड़ा कार्य करने के बाद कोई विघ्न आता है कि नहीं? उसके बाद सुरसा जरूर आती है। त्यागियों के सामने सुरसा जरूर खड़ी होती है। हनुमानूजी ने जब सबसे बड़ा त्याग किया तो सुरसा आकर खड़ी हो गयी। सुरसा कौन है? लोकैषणा ही सुरसा है। त्याग करने के बाद लोग हमको त्यागी कहें और हमको सब त्यागी समझें, इस इच्छा से बचना बड़ा कठिन है। हनुमानूजी सुरसा से कहते हैं कि अभी नहीं, पहले मैं रामकाज तो कर लूँ जो मेरे जीवन का लक्ष्य है। पहले मैं श्रीराम का सन्देश सीताजी के पास और सीताजी का संदेश श्रीराम के पास पहुँचा दूँ तब उसके बाद तुम मुझको खा लेना। सुरसा समझ गयी कि जब ये दोनों काम तुम कर लोगे तो फिर मैं तुमको क्या खा पाऊँगी! खाने की बात तो अभी है। अभी मैं तुमको नहीं छोड़ूँगी और तब हनुमानूजी चुनौती दे देते हैं। इसके बाद हनुमानूजी का कर्मयोग है। वे संघर्ष के लिये चुनौती दे देते हैं -

जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा। ५/१/६

होता यह है कि सुरसा का मुख यदि बड़ा हो जाय और त्यागी का शरीर यदि छोटा हो जाय तो बड़ा संकट सामने आने की सम्भावना है। लोकैषणा बड़ी हो और व्यक्ति छोटा हो तो डर यही है कि लोकैषणा खा जायेगी। लोकैषणा यही है कि जैसे हम हैं, लोग हमको उससे भी अच्छा कहकर पुकारें। यही लोकैषणा की वृत्ति है, लेकिन हनुमानूजी इतने महान् हैं कि ज्यों-ज्यों लोकैषणा बढ़ती है, हनुमानूजी अधिक बढ़ते जाते हैं, लेकिन अंत में हनुमानूजी ने बड़ा विचित्र और अद्‌भुत कार्य किया। सुरसा ने सौ योजन का मुँह फैलाया, हनुमानूजी उससे दूने दो सौ योजन के बन सकते हैं, पर हनुमानूजी ने सोचा कि बड़े बनकर लोकैषणा को जीता नहीं जा सकता, लघु होने पर भक्षण किये जाने का डर है? अतः हनुमानूजी **अति लघु** बन गये। **अति लघु** का क्या अर्थ है?

यदि अंकों में कहें तो एक **लघु** है, परन्तु शून्य **अतिलघु** है। हनुमानूजी शून्य बन गये, क्योंकि हनुमानूजी ने सोचा कि जब तक दिखायी दूँगा, तब तक ही तो लोकैषणा खायेगी। जब शून्य बन जाऊँगा तो दिखायी ही नहीं दूँगा तो खायेगी कैसे? अपने आपको दिखाने की, प्रदर्शित करने की वृत्ति जब तक है, तब तक लोकैषणा जरूर खा सकती है, लेकिन जब अपने आपको बिल्कुल शून्य बना लिया

तो सुरसा ढूँढ़ने लगी कि बन्दर कहाँ चला गया? सुरसा हनुमान्‌जी को खोज नहीं पायी। हनुमान्‌जी उसके मुख मैं पैठ गये, लेकिन सुरसा को पता नहीं चला। अपने को शून्य बना लेना कि हम कुछ हैं ही नहीं, यही शरणागति और दैन्य का पक्ष है। जब हम कुछ हैं ही नहीं तो तुम हमें क्या खाओगी? अगर हम कुछ होते तो खा सकती थी। हम तो शून्य हैं। हनुमान्‌जी मुख से निकल आये और फिर भी कितनी विनम्रता है कि सुरसा को हरा देने के बाद भी सुरसा को फटकारा नहीं, बड़ी विनम्रता से सिर झुकाया। सुरसा को प्रणाम किया -

बदन पइठि पुनि बाहेर आवा।
मागा बिदा ताहि सिरु नावा।। ५/१/११

यह जो विनम्रता की पराकाष्ठा है, वह दर्शनीय है। हारने पर तो प्रणाम करना ही पड़ता है, परन्तु जीतने के बाद भी इतनी विनम्रता है कि हारे हुए को भी प्रणाम करते हैं। हनुमान्‌जी से किसी ने पूछा कि आपने सिंहिका को तो मार डाला फिर सुरसा को क्यों नहीं मारा? दोनों ही आपको खाना चहती थीं, सिंहिका भी और सुरसा भी! हनुमान्‌जी ने कहा कि भई! सिंहिका ईर्ष्या थी और ईर्ष्या की वृत्ति दूसरे को गिराने में आनन्द का अनुभव करती है। सिंहिका ऊपर उड़ने वाले की छाया को पकड़कर उसे नीचे गिरा लेती थी। जितने ईर्ष्यालु होते हैं वे देखते रहते हैं कि जरा भी कोई हमसे ऊपर उठता हुआ दिखायी दे तो उसको नीचे गिरा दें। दूसरे को नीचे गिराने की ईर्ष्या की वृत्ति बड़ी घातक है। उसको तो तुरन्त मार ही देना चाहिए, लेकिन लोकैषणा को इसलिए नहीं मारना चाहिए कि भले ही लोकैषणा में दोष हों, परन्तु लोकैषणा के कारण व्यक्ति भले काम तो करता है। लोकैषणा के द्वारा अच्छा काम करने की प्रेरणा तो मिलती है इसलिए उसको मारने की आवश्यकता नहीं है, उसमें राग न रहे, इसकी आवश्यकता है। परिणाम क्या होता है कि सुरसा आशीर्वाद देकर हनुमान्‌जी को विदा करती है-

राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान।। ५/२

यह शरणागति और दैन्यत्व का स्वरूप है। यह तो बड़ा विस्तृत प्रसंग है। श्री हनुमान्‌जी ने वैराग्य के शिखर से लंका को देख लिया और तब निर्णय किया -

पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार।। ५/३

हनुमान्‌जी ने विचार किया कि लंका में पैठने के लिये भी मुझे अत्यन्त छोटा बनकर ही पैठना चाहिए। सिंहिका के सामने हनुमान्‌जी बड़े बने तो उनको लगा कि बड़ा बनने पर ही ईर्ष्या हो सकती है, इसलिए जब लंका में पैठना है तो अतिलघु बन जाना चाहिए। हनुमान्‌जी ने अपने को मच्छर के समान बना लिया। अब कुछ लोग तो इसे पढ़कर इसी में उलझ जाते हैं कि मच्छर बन गये तो अँगूठी कैसी रखी? अँगूठी बड़ी थी कि मच्छर बड़ा था? वैसे ही हनुमान्‌जी मुद्रिका को -

प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माहीं।
जलधि लाँघि गये अचरज नाहीं।।-हनुमानचालीसा

जब अशोक वाटिका में सीताजी को मुँदरी दी तो उसको धो लिया था कि वैसे ही जूठी दे दी? स्थूल में इतनी दृष्टि आ गयी कि सारा तत्त्वज्ञान बह गया। यही हिसाब लगाने लगे कि कितनी लम्बाई है? कितनी चौड़ाई है? अरे भई! उसके पीछे जो निहित तात्पर्य है उसको समझना चाहिए। मुँदरी बड़ी है कि छोटी? इसका तत्त्वज्ञान यह है कि रामनाम बड़ा है कि छोटा? सीताजी की खोज में जब बन्दर चले तो सबने प्रणाम किया और प्रभु ने सबको आशीर्वाद दिया। सबसे अंत में हनुमान्‌जी आये तो प्रभु को हँसी आ गयी कि लेने के लिये तो सबसे बाद में आना घाटे का सौदा हो सकता है। हनुमान्‌जी ने कहा कि प्रभु! आपने बड़ी वस्तुएँ सब बाँट दीं, अब अन्त में जो छोटी वस्तु बची है, आप वही मुझे दे दीजिए। आप सारा शास्त्र, सारा उपदेश लोगों को बाँट दीजिए। आपने परशुरामजी से स्वयं यह कहा था कि मेरा तो छोटा-सा नाम है- **'राम'** -

राम मात्र लघु नाम हमारा। १/२८१/६

बाकी सब कुछ दूसरों को दे दीजिए, लेकिन बस यह 'रामनाम' जो छोटा-सा है, यही मुझे दे दीजिए। यह दो अक्षर का कितना छोटा सा है, पर बड़ा इतना कि इसमें सारा ब्रह्माण्ड समाया हुआ है-

बंदउँ नाम राम रघुबर को।
हेतु कृसानु भानु हिमकर को।। १/१८/१

श्री हुनमान्‌जी उस रामनाम का आश्रय लेकर जो **महतोमहीयान्** है, बड़े-से-बड़ा है और छोटे-से-छोटा भी है, **अणोरणीयान्** है, उसका आश्रय लेकर लंका में

प्रविष्ट होते हैं। हनुमान्‌जी में इतनी विनम्रता है, इतनी निरभिमानिता है कि यह कहना अधिक ठीक होगा कि मुँदरी में हनुमान्‌जी हैं न कि हनुमान्‌जी के मुख में मुँदरी है। यद्यपि दोनों बातें हैं। रामनाम हमारे भीतर है कि हम रामनाम के भीतर हैं? लेकिन लंका भी कोई साधारण नहीं है, कितनी सावधानी है कि -

मसक समान रूप कपि धरी।
लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी।। ५/३/१

जब घुसे तो कितनी पैनी दृष्टि है दुर्वृत्तियों की! लंकिनी ने इतने छोटे बनने के बाद भी हनुमान्‌जी को देख ही लिया और तुरन्त उसने कहा कि क्या तुम यह समझ रहे हो कि मैं तुम्हें देख नहीं रही हूँ? कुछ लोगों में दूसरे के दोषों को देखने की बड़ी पैनी आँखें होती हैं कि वे सूक्ष्मदृष्टि से दूसरों में दोष ढूँढ़ ही लेते हैं, चाहे जितना दोषों का अभाव क्यों न हो! लंकिनी ने पकड़ लिया और पूछा कि कहाँ जा रहे हो? लंकिनी ने यह भी कहा कि तुम चोर हो। हनुमान्‌जी ने पूछा कि मैं चोर कैसे हूँ? बोली कि यदि चोर न होते तो छिपकर जाते क्या? लंकिनी की मान्यता है कि जो बड़ा दिखायी दे, वह बड़ा है और जो छिपकर कोई काम करे, वह जरूर चोर है। हनुमान्‌जी ने सोचा कि इसको मुक्का मारने की आवश्यकता है, वे फिर बड़े बन गये और मुक्का मारा। यह वैराग्य का मुक्का है-

प्रबल वैराग्य दारुण प्रभंजन तनय,
विषय बन भवनमिव धूमकेतू। विनय-पत्रिका ५८/८

श्रीहनुमान्‌जी हैं प्रबल वैराग्य और लंकिनी है प्रवृत्ति। यह बड़े-बड़े महापुरुषों को, बड़े-बड़े त्यागियों को खा जाने वाली है, यह प्रवृत्ति का चक्कर बड़ा विकट है। जब प्रवृत्ति पकड़ ले और खाने के लिये प्रस्तुत हो तो -

मुठिका एक महा कपि हनी।
रुधिर बमत धरनीं ढनमनी।।

जब हनुमान्‌जी का मुक्का कस करके लगा तो मुँह के बल गिर पड़ी और मुँह से रक्त निकलने लगा। वैराग्य का मुक्का लगने पर विरक्त होना स्वाभाविक है। महात्माओं के लिये विरक्त शब्द का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार हनुमान्‌जी ज्ञान के आधर पर बड़े हो गये और वैराग्य का मुक्का लगाकर, प्रवृत्ति पर प्रहार करके उसके राग के रक्त को कम कर दिया। इसके पश्चात् प्रवृत्ति हाथ जोड़कर हनुमान्‌जी के समक्ष खड़ी हो गयी। हनुमान्‌जी ने कहा कि तुम चोरों को खाने

वाली बिल्कुल नहीं हो, क्योंकि अगर तुम चोरों को खाने वाली होती तो सबसे पहले रावण को खाती, जो सीताजी को चुराकर लाया है। मैं तो चोर का पता लगाने आया हूँ तो मुझे ही चोर समझ रही है, और जो असली चोर है, उसी को अपना स्वामी समझ बैठी है। यही तेरा विपरीत ज्ञान है, जो सत्य को असत्य और असत्य को सत्य समझती है, मोह को महत्त्वपूर्ण और ज्ञान को महत्त्वपूर्ण नहीं मानती। सत्संग के परिणामस्वरूप लंकिनी में परिवर्तन हुआ और उसने कहा -

प्रबिसि नगर कीजै सब काजा।
हृदयँ राखि कोसलपुर राजा।। ५/४/१

जब हनुमान्‌जी अशोकवाटिका में पहुँचे तो क्या किया? सीताजी का दर्शन करना है। सीताजी साक्षात् भक्ति हैं। क्या बनकर गये? उनके पास तो प्रत्येक वेश हैं। अशोकवाटिका में पैठे तो गोस्वामीजी ने लिखा-

तरु पल्लव महुँ रहा लुकाई।
करइ बिचार करौं का भाई।। ५/८/१

अशोकवाटिका के वृक्ष के पत्तों की आड़ में छोटे बन कर छिप गये। माँ के सामने हनुमान्‌जी छोटे बालक बनते हैं, यह भक्तियोग है, भक्त तो अपने को छोटा मानता है। लघुरूप भक्तियोग है और वहीं से लघु बनकर ही राम की कथा कहते हैं। बड़े बनकर राम की कथा कहना तो अभिमान से कथा कहना है। छोटे बनकर कथा कह रहे हैं। कथावाचक कहीं दिखायी नहीं दे रहा है और पूरी कथा सुनने को मिल रही है। कितनी बढ़िया बात है! श्रोता तो यही पसंन्द करता है कि कथावाचक भी दिखायी दे। माँ के मन में भी कथावाचक को देखने की इच्छा उत्पन्न हुई, किन्तु हनुमान्‌जी ने जो कथा सुनायी, वह परदे की आड़ में से कथा सुनायी, इसका अर्थ यह कि कथावाचक अपने को न दिखावे और कथा के माध्यम से भगवान् को दिखा दे। जो अपने को दिखाने की चेष्टा करेगा, वह उतनी ही मात्रा में बँटवारा कर लेगा कि इतना अपने को दिखाना है, और इतना भगवान् को, लेकिन जो अपने को नहीं, केवल भगवान् को ही दिखाना चाहता है -

रामचन्द्र गुन बरनैं लागा।
सुनतहिं सीता कर दुख भागा।। ५/१२/५

पर श्रोता के मन में वक्ता को देखने की इच्छा होती है, इसलिए सीताजी ने कहा कि -

श्रवनामृत जेहिं कथा सुनाई।
कही सो प्रगट होति किन भाई।। ५/१२/७

तब हनुमानूजी छोटे से बन्दर के रूप में सामने आ गये तो देखकर माँ को घबराहट हो गयी और वे पीठ घुमाकर बैठ गयीं। पीछे माँ ने एक दिन पूछा कि जब मैं पीठ घुमाकर बैठ गयी तो तुमको बुरा तो नहीं लगा! हनुमानूजी ने कहा कि माँ! आपने तो बहुत अच्छा किया, क्योंकि आपने देखना बन्द कर दिया, इसका अर्थ यही था कि सुन्दर तो राम कथा है, कथावाचक तो बन्दर ही है, उसको देखने की बात ही क्या है? इसमें दुःखी होने की क्या बात थी? आपके चरित्र में जो होता है, वह आपके अनुकूल ही है, वहाँ पर भी हनुमानूजी को दोनों योगों का आश्रय लेना पड़ा। बड़ा भी बनना पड़ा और छोटा भी। बहुत बढ़िया सूत्र है गोस्वामीजी का। हनुमानूजी तो बेटा शब्द सुनने के लिये व्यग्र हैं, इसलिए बिल्कुल छोटे बने रहे और छोटा बनना काम आ गया। हनुमानूजी ने कहा कि-

कछुक दिवस जननी धरु धीरा।
कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा।। ५/१५/४

'कपिन्ह सहित' सुनकर माँ ने इस नन्हें से बन्दर को इतना बड़ा दावा करते देखा कि हम लोग आवेंगे और राक्षसों को मारकर आपको छुड़ाकर ले चलेंगे तो माँ का वात्सल्य उमड़ पड़ा, क्योंकि वात्सल्य का स्वभाव है कि वह बड़े में न होकर छोटे में ही होता है। माँ ने कहा कि -

हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना। ५/१५/६

बेटे ! क्या सारे बन्दर तुम्हारे समान ही हैं? माँ के मुख से पुत्र शब्द सुनकर हनुमानूजी धन्य हो गये और कृतकृत्य हो गये। तब हनुमानूजी ने अपने आपको बड़ा बनाकर दिखाया। छोटे बनने और बड़ा बनने में अन्तर क्या है? जो बड़ा तो बन जाय और छोटा न बन पाये, वह अभिमानी हो गया और जो छोटा है और बड़ा बनना नहीं जानता, उसका छोटापन तो उसकी असमर्थता है, उसकी विशेषता नहीं। उसमें बड़ा बनने के लिये सामर्थ्य ही नहीं है -

मोरें हृदय परम संदेहा।
सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा।।
कनक भूधराकार सरीरा।
समर भयंकर अति बल बीरा।। ५/१५/७-८

हनुमानूजी ने ज्ञानयोग के माध्यम से अपना वह श्रेष्ठतम रूप प्रकट किया-

सीता मन भरोस तब भयऊ।
पुनि लघु रूप पवन सुत लयऊ।।५/१५/८

हनुमानूजी इतने सावधान है कि तुरन्त छोटे बन गये। माँ का संशय मिटाने के लिये तो ज्ञानयोग का आश्रय आवश्यक था और उसके द्वारा माँ का संशय मिटा, लेकिन फिर हनुमानूजी ने सोचा कि नहीं, ऐसा न हो कि मैं घाटे में रह जाऊँ और माँ मुझे बड़ा बेटा मान लें! मुझे तो छोटे बेटे का सम्बन्ध जोड़ना है। माँ ने पूछा कि तुम बढ़ते रहते हो, तो वह असली है कि यह असली है? तुम छोटे हो कि बड़े? हनुमानूजी ने कहा कि माँ! मैं तो छोटा हूँ, परन्तु प्रभु का प्रताप बड़ा है, इसलिए उनके प्रताप से मैं इतना बड़ा हो गया, यही दिखाना था। मैं तो बिल्कुल छोटा हूँ। माँ ने प्रसन्न होकर तुरन्त आशीर्वाद दे दिया कि -

आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना।
होहु तात बल सील निधाना।।
अजर अमर गुननिधि सुत होहू।
करहुँ बहुत रघुनायक छोहू।। ५/१६/२

हनुमानूजी ने छोटा बनकर माँ के वात्सल्य का पूरा आनन्द लिया और कहा-

सुनहु मातु मोहिं अतिसय भूखा।
लागि देखि सुंदर फल रूखा।। ५/१६/८

कहाँ तो इतनी ऊँची-ऊँची बातें हो रही थीं और कहाँ भूख लगने की बात करने लगे। तात्पर्य यह था कि जब मुझे पुत्र कहा तो माँ और बेटे के बीच तो खाने-पीने की ही चर्चा चलती है। बेटा तो माँ से यही कहेगा कि माँ! मुझे भूख लगी है, भूख मिटाओ और इसी क्रम में लंका जलाते समय सभी योगों का आश्रय लेते हैं। जब वे विशाल बनकर भी हल्के बने तो यह कर्तृत्व का भार नहीं है। हनुमानूजी जब नागपाश से अपने को मुक्त करते हैं तो इसके लिये अपने को छोटा बना लिया, यह भक्तियोग है। लंका को जलाने के लिये हनुमानूजी ने कर्मयोग का आश्रय लिया, परन्तु उनमें अहंता का भारीपन नहीं है, क्योंकि जिस महल पर वे खड़े होंगे, वही भार से गिर पड़ेगा। इसलिए हल्कापन अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए-

देह बिसाल परम हरुआई।
मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई।।५/२५/१

कर्म में अगर अहंकार का बोझ हुआ तो व्यक्ति को नीचे गिराये बिना नहीं रहेगा। श्री हनुमान्जी में महान् कर्म होते हुए भी कर्तृत्वाभिमान नहीं है। सब कुछ करने के बाद श्रीराम जब प्रशंसा करने लगे तो नित्य चरणों को ही देखने वाले श्रीहनुमान्जी श्रीराम का मुख देखने लगे। श्रीराम को हँसी आ गयी कि लगता है अब तुम चरणों के स्थान पर मुख की उपासना करोगे?-

सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख। ५/३२

हनुमान्जी ने कहा कि प्रभु! मैं तो चरणों वाला ही हूँ, परन्तु मुख इसलिए देखने लगा कि जब आपने नारदजी की प्रशंसा की थी, कहीं वैसा ही मुख तो नहीं बना हुआ है! मैं देखना चाहता था कि मेरी प्रशंसा करते समय आपके मुख पर क्या भाव है? नारदजी को प्रशंसा सुनकर अभिमान हुआ तो आपने बन्दर बना दिया था, परन्तु मैं तो पहले से ही बन्दर बनकर आ गया हूँ। फिर क्या भय है?

सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत।। ५/३२

चरणों से दृष्टि उठाकर मुख की ओर देखा और मुख से फिर चरणों में आ गये। प्रभु हनुमान्जी की बाँह पकड़कर उठा रहे हैं। अद्भुत् दृश्य है! प्रभु हनुमान्जी से कह रहे हैं कि उठो! उठो!! हनुमान्जी ने कहा कि उठने में तो दोनों खो जायँगे। यदि उठूँगा तो चरण भी खो जायेगा। कोई गिरे हुए को उठाता है तो उठाने के बाद तुरन्त हाथ छोड़ देता है। प्रभु! मैं तो यही चाहता हूँ कि जीव आपके चरणों में पड़ा रहे और आप उसे सदा पकड़े रहें तभी उसके जीवन में पतन से मुक्त होने का भय समाप्त हो सकता है। आप यदि जीव का हाथ छोड़ दें तो कभी भी उसके जीवन में निश्चिन्तता नहीं आ सकती।

हनुमान्जी ज्ञान, भक्ति, कर्म, दैन्य और शरणागति से अभिभूत हैं। ज्ञानी को तत्त्वज्ञान दे देते हैं। भक्त को भक्ति का सन्देश दे देते हैं। कर्मयोगी को कर्मयोग का सन्देश दे देते हैं और शरणागत को निर्बलता और दैन्य का सन्देश दे देते हैं तथा उन्हें भगवान् के श्रीचरणों का दर्शन करा देते हैं।

जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल।
सो कृपालु मोहि तो पर सदा रहउ अनुकूल।।७/१२४-क

।। बोलिये सियावर रामचन्द्र की जय।।